मूल्य 1 रूपया

कृषक समाचार

भारत कृषक समाज का मासिक मुख पत्र

कृषक समाचार की 32,000 प्रतियां सन् 1960 से हर महीने छापकर सदस्यों को भेजी जाती हैं

वर्ष 66 | मार्च, 2021 | अंक 03 | कुल पृष्ठ 8

विकास दर संभालने की कवायद

अरुण कुमार, अर्थशास्त्री

राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (एनएसओ) के मुताबिक, कोरोना महामारी की वजह से मौजूदा वित्तीय वर्ष में देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में ७.७ फीसदी तक की गिरावट हो सकती है। यह गिरावट पहले के अनुमान से कहीं ज्यादा है। पिछले वित्तीय वर्ष में विकास दर ४.२ प्रतिशत थी। वैसे तो, पहले भी जीडीपी दर ऊपर-नीचे होती रही है, लेकिन आजादी के बाद यह पहला मौका होगा, जब इसमें इतनी बड़ी गिरावट दर्ज की जाएगी। आखिर ऐसा क्यों हुआ?

दरअसल, कोविड-१९ के कारण इस वर्ष अप्रत्याशित हालात बन गए। लॉकडाउन लगा कर हमने अपनी आर्थिक गतिविधियां खुद बंद कर दीं। युद्ध के समय भी ऐसा नहीं होता। वैसी स्थिति में संघर्ष के बावजूद मांग की स्थिति बनी रहती है, जिसके कारण उत्पादन का ढांचा बदल जाता है और अर्थव्यवस्था चलती रहती है। जैसे, दूसरे विश्व युद्ध के समय जर्मनी में चॉकलेट बनाने वाली एक कंपनी ने हवाई जहाज के कल-पुर्जे बनाने शुरू कर दिए। मगर कोरोना संक्रमण -काल में मांग और आपूर्ति, दोनों ठप हो गई।

अपने यहां जब कभी भी गिरावट आई, तब उसकी वजहें तात्कालिक रहीं। मसलन, सन १९७९ से पहले अर्थव्यवस्था में सिकुड़न सूखे के कारण होता था। चूंकि उस दौर में उत्पादन का प्रमुख आधार कृषि था, इसलिए साल १९५१, १९६५, १९६६, १९७१, १९७२ और १९७९ में पर्याप्त बारिश न होने से विकास दर प्रभावित हुई। कृषि-उत्पादन बढ़ते ही अर्थव्यवस्था अपनी गति पा लेती थी। सरकार की इसमें कोई भूमिका नहीं होती थी। साल १९६७-६८ में यह भी पाया गया कि देश में जब सूखा आता है, तो कपड़े की मांग कम हो जाती है। असल में सूखा पड़ जाने से लोगों की क्रय क्षमता कम हो जाती थी और वे नए कपड़े खरीदने से बचने लगते थे। चूंकि कृषि के बाद कपड़ा उद्योग दूसरा सबसे बड़ा सेक्टर था, इसलिए वहां मांग कम होने का असर हमारी पूरी अर्थव्यवस्था पर दिखता।

मगर १९७९-८० के बाद अर्थव्यवस्था पर सर्विस सेक्टर हावी होता गया, जिसके

कारण सूखे के बावजूद अर्थव्यवस्था बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं हुई। जैसे साल १९८७ के सूखे के बाद भी विकास दर धनात्मक रही। अब अर्थ व्यवस्था में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी घट कर १३ प्रतिशत के करीब रह गई है, जबकि सर्विस सेक्टर की भागीदारी बढ़कर ७५ प्रतिशत हो गई है। इस कारण यदि कृषि में २० फीसदी तक की गिरावट जो काफी ज्यादा मानी जाएगी भी आती है, तो अर्थव्यवस्था को सिर्फ २.६ प्रतिशत का नुकसान होगा, जब कि सर्विस सेक्टर आठ प्रतिशत की दर से भी बढ़ता रहा, तो वृद्धि दर में उसका पांच फीसदी का योगदान रहेगा।

विगत वर्षों में जब कभी संकट आया, तो सरकार को खास पहल करनी पड़ी। साल २००७-०८ की वैश्विक मंदी का ही उदाहरण लें। इसमें सरकार ने मांग बढ़ाने का काम किया, जिसके कारण विकास दर काबू में रही। उस समय न सिर्फ किसानों के कर्ज माफ किए गए, बल्कि मध्याह्न भोजन, ग्रामीण रोजगार गारंटी जैसी योजनाओं का बजट बढ़ा कर दो-तीन लाख करोड़ रुपये ग्रामीण क्षेत्रों में पहुंचाए गए। इस से देश का राज कोषीय घाटा जरूर बढ़ गया, लेकिन लोगों के हाथों में पैसे आने से बाजार में मांग पैदा हो गई।

ग्रामीण क्षेत्रों में पैसे भेजने से स्थानीय अर्थव्यवस्था को खूब लाभ मिलता है। इस के बरअक्स, शहरी लोग रुपये की आमद होने पर विलासिता की चीजें अधिक खरीदते हैं। चूंकि विलासिता के ज्यादातर उत्पाद विदेश से आयात होते हैं, इसलिए इन पर खर्च किया जाने वाला काफी पैसा संबंधित निर्यातक देश के खाते में चला जाता है, जब कि ग्रामीण बाजार में विलासिता की चीजें तुलनात्मक रूप से कम खरीदी जाती हैं, जिस से स्थानीय अर्थव्यवस्था में पैसों की आमद बढ़ जाती है।

आंकड़ों में इस साल कृषि क्षेत्र में ३.४ प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है। मगर पहली तिमाही में इस क्षेत्र में जबर्दस्त गिरावट आई है, क्योंकि मंडी में फल-सब्जी जैसे उत्पाद काफी कम मात्रा में पहुंचे। दूसरी तिमाही में अर्थव्यवस्था कुछ संभली जरूर, लेकिन पटरी पर नहीं लौट सकी। तीसरी-चौथी तिमाही की भी बहुत अच्छी तस्वीर नहीं दिख रही। यानी, जो आकलन किया गया है, उससे भी ज्यादा की गिरावटआ सकती है। जैसे कि सर्विस सेक्टर में रेस्तरां, होटल, परिवहन आदि की सेहत अब भी डांवांडोल ही है। इस संकट का समाधान क्या है? सार्वजनिक खर्च बढ़ाने का दांव खेला जा सकता है, पर हमारा राज कोषीय घाटा पहले से ही बढ़ा हुआ है। कोविड-१९ से पहले, केंद्र, राज्य और सार्वजनिक इकाइयों का संयुक्त घाटा करीब १० फीसदी था। पिछले साल की आखिरी तिमाही में वृद्धि दर ३.५ प्रतिशत थी, जबकि इससे दो साल पूर्व की तिमाही में आठ फीसदी। पहले से बिगड़ रही आर्थिक सेहत को कोरोना महामारी ने आई सी यू में पहुंचा दिया है। मांग और आपूर्ति खत्म हो जाने के कारण नए तरीके से इस संकट से हमें लड़ना होगा। इसलिए सार्वजनिक खर्च बढ़ाना एक मात्र उपाय नहीं हो सकता, क्योंकि राज कोषीय घाटा अभी २० फीसदी से भी अधिक है। बीते साल २२ लाख करोड़ रुपये के आर्थिक पैकेज का भी एलान किया गया। मगर इस का सिर्फ

१५ फीसदी हिस्सा बजट के रूप में आवंटित किया गया, शेष ८५ फीसदी राशि बतौर कर्ज बांटने की बात कही गई। चूंकि कर्ज लेने के लिए लोग तैयार नहीं थे, इसलिए यह राशि उनकी क्रय- क्षमता नहीं बढ़ा सकी। बेहतर तो यह होता कि सरकार ग्रामीण योजनाओं के बजट बढ़ाती, ताकि लोगों के हाथों में सीधे पैसे पहुंचे। वैसे भी, संगठित क्षेत्र की कंपनियां खुद को संभाल सकती हैं, क्योंकि उनके पास पूंजी भी होती है और बैंक के दरवाजे भी उनके लिए खुले रहते हैं, जब कि अपने देश में असंगठित क्षेत्र की तकरीबन छह करोड़ छोटी-मोटी इकाइयां हैं, जो बहुत छोटे, लघु और मध्यम उद्योग के ९९ फीसदी रोजगार बांटती हैं। परेशानी इन्हीं क्षेत्रों को है। यहीं से लोगों का पलायन हुआ है। जाहिर है, ग्रामीण रोजगार योजनाओं का विस्तार जरूरी है। १०० दिनों के बजाय जरूरत मंदों को २०० दिनों का रोजगार दिया जाना चाहिए। इस समय जरूरत एक शहरी रोजगार योजना की भी है। अर्थव्यवस्था तभी संभलेगी, जब मांग बढ़ेगी। और, इसके लिए लोगों के हाथों में पैसे देने चाहिए। रही बात सर्विस सेक्टर की, तो टीकाकरण अभियान का जैस-जैसे विस्तार होगा, यह क्षेत्र भी अपनी पुरानी लय पा लेगा।

o-o-o-o-o-o-o-o-o-o-o-o-o

कृषि के सुनहरे भविष्य के लिए क्या करना चाहिए? कॉरपोरेट खेती दुनिया में कहीं भी सफल नहीं हो पाई है और भारत में भी इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए

सुखपाल सिंह, प्रोफेसर (आईआईएम अहमदाबाद)

भारतीय कृषि के भविष्य का सवाल पिछले काफी समय से लगातार उठ रहा है और हाल में कृषि सुधारों के तहत निजी थोक बाजार स्थापित करने की इजाजत, ठेके पर खेती, किसानों से सीधी खरीद और पूर्व में राज्य स्तर पर जमीन लीज पर देने और अब केंद्रीय कानून के तहत इसकी मंजूरी देने को लेकर ये सवाल और भी महत्वपूर्ण हो गया है। हालांकि, इस सवाल का जवाब जानने से पहले यह जरूरी है कि भारतीय कृषि क्षेत्र और इसके अहम साझेदारों यानी जमीन मालिक, पट्टेदार या लीज पर जमीन लेने वालों के बारे में चर्चा कर ली जाये।

ये तो बहुत सामान्य जानकारी है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद में खाद्य उत्पादन क्षेत्र का योगदान सिर्फ १३ प्रतिशत है जबकि ४४ प्रतिशत वर्क फोर्स इस सेक्टर में है। अन्य क्षेत्रों से तुलना करें, तो कृषि एक निराशा जनक तस्वीर पेश करती है। इस क्षेत्र में कमाई भी बहुत कम होती है। हम

ये भी जानते है कि भारत के ८७ प्रतिशत किसानों के पास पांच एकड़ से भी कम खेत है। इनमें से आधा हिस्सा सूखा/बारिश पर आश्रित हो सकता है।

किसानों की कुल आमदनी का एक हिस्सा ही अब खेती से आता है और बाकी आमदनी मजदूर, गैर कृषि गतिविधियां और अन्य जरिये से होती है। पंजाब जैसे राज्यों में किसान (खास कर छोटे किसान) उत्पाद और बाजार का जोखिम भी झेलते है तथा उत्पादन व गैर उत्पादन जरूरतों को पूरा करने के लिए गैर संस्थानिक स्रोतों से मिलने वाले लोन पर निर्भर रहते हैं। ये लोन महंगा और उत्पादन जैसे दूसरे बाजारों से जुड़ा होता है।

कृषि उत्पादन में छोटे किसानों का योगदान ५१ प्रतिशत (४६ प्रतिशत कृषि जमीन) है और इनमें से ७० प्रतिशत फसल महंगी कीमत की होती है, मसलन सब्जियां व दूध। लेकिन, छोटे किसान कम शिक्षित और पिछड़ी जातियों व समुदायों से आते है, जिनकी पहुंच आधुनिक व्यवस्था जैसे ठेका खेती और सीधी खरीद तक नहीं होती है।

हालिया कृषि सुधार का लक्ष्य कृषि क्षेत्र में नया निवेश खास कर घरेलू और वैश्विक निजी कॉरपोरेट सेक्टरों से निवेश लाना है। माना जाता है कि इस तरह के निवेश लाने के लिए इस सेक्टर से जुड़े विभिन्न मार्केट जैसे आउटपुट मार्केट, फार्म आउटपुट और सेवा बाजार व लैंड मार्केट के विनियमन की जरूरत है।

लेकिन, हम ये भूल गये है कि इस तरह के कृषि सुधार के जरिये न तो ये संभव है और न ही जरूरी क्योंकि इन सुधारों का खेतों के रकबे से कोई लेना देना है। हालांकि, अपवाद के तौर पर जमीन को लीज पर देने के कानून और भूमि जोत की अधिकतम सीमा खत्म करने की बात की गई है, लेकिन इसकी अपनी सीमाएं है क्योंकि बहुत सारे किसान भूमिहीन है और किसानों का जमीन से जुड़ाव नैतिक अर्थव्यवस्था या जीविका के चलते है।

अतः भूमि संबंधी कुछ सुधार बहुत आसानी से नहीं हो सकते हैं। मगर सीमांत व भूमिहीन किसानों की जमीन तक बेहतर पहुंच व सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता कृषि क्षेत्र और इसके प्राथमिक साझेदारों के प्रदर्शन में सुधार के लिए अनिवार्य है।

कृषि सुधार के पीछे जो भी अनुमान लगाये गये हैं, वे या तो त्रुटिपूर्ण है या फिर जान बूझ कर ऐसे गलत अनुमान लगाये गये हैं। मिसाल के तौर पर बहुत सारे शोधों से पता चलता है कि छोटे किसान, मझोले व बड़े किसानों के बराबर या उनसे ज्यादा उत्पादन करते हैं, जो इस तर्क को खारिज करता है कि छोटे किसान भारतीय कृषि का भविष्य नहीं हो सकते हैं।

इसी तरह बिहार में खेती से हर महीने प्रति हेक्टेयर ४,२३६ रुपए की कमाई होती है, जबकि पंजाब में ये कमाई प्रति महीने ३,४४८ रुपए है। इसकी वजह ये है कि पंजाब में खेती में बिहार के मुकाबले कम विविधता है। पंजाब में सिर्फ ११ प्रतिशत खेत में फल व सब्जियों की खेती होती है, जबकि बिहार में ३५ प्रतिशत खेतों में फल व सब्जियां उगाई जाती हैं।

हालांकि बिहार में सक्षम व विनियमत

कृषि बाजार नहीं हैं और प्राकृतिक विविधता भी है। बिहार में खेत का औसत आकार सिर्फ ०.३९ हेक्टेयर है जबकि पंजाब में ३.६२ हेक्टेयर है। अतः खेती लाभकारी है कि नहीं, ये खेत के आकार से नहीं बल्कि खेत में क्या उगाया जा रहा है, कब उगाया जा रहा है, कैसे उगाया जा रहा है, क्यों उगाया जा रहा है, किसके लिए और कितना उगाया जा रहा है, इस पर निर्भर करता है।

अनाज आधारित बुआई के पैटर्न के मद्देनजर किसान अपने छोटे खेतों से ही ज्यादा कमाई कर सकते हैं। ये सर्वविदित है कि ज्यादातर किसान अपने कृषि योग्य भूमि के ज्यादातर हिस्से (पंजाब में ६९ प्रतिशत और बिहार में ४० प्रतिशत) में धान और गेहूं की खेती करते हैं। इन खाद्यान्नों से कितनी कमाई कर सकते हैं, इसकी सीमा है, क्योंकि उचित दाम (न्यूनतम समर्थन मूल्य, जो बाजार मूल्य को भी निर्धारित करता है) किसानों के एक छोटे हिस्से (१० प्रतिशत से भी कम) को ही मिल पाता है और किसान उत्पादन खर्च को बढ़ा चढ़ा कर भी नहीं बता सकते हैं।

दूसरी, फसलों के लिए भी न्यूनतम समर्थन बहुत कम किसानों को मिलता है और वो भी उन कुछ राज्यों में ही जहां सरकारी खरीद की जाती है। दूसरी बात ये है कि एक बार किसान अपना कृषि उत्पाद मंडी में ले जाता है, तो उसे दोबारा वापस नहीं ला सकता है, क्योंकि कृषि उत्पाद वापस लाना किसानों के लिए मृत शरीर को शवगृह लाने जैसा है।

बाजार के जोखिमों में मार्केट की गैर मौजूदगी, उत्पाद का कम दाम मिलना, लेन देन पर अधिक खर्च और बिक्री के लिए कम उत्पाद होने के कारण कमजोर मोल भाव शामिल हैं। बाजार के जोखिमों के कारण कृषि उत्पादकों को कम और अस्थाई कमाई होती है। यहीं पर बाजार की भूमिका अहम हो जाती है, क्योंकि अगर किसान अच्छा उत्पादन कर भी ले, लेकिन उत्पाद को अच्छे से बेच ही न पाये, तो कहानी वहीं खत्म हो जाती है।

अगर बिहार में एपीएमसी मार्केट और दूसरे मार्केट चौनल होते, जिनको अभी प्रमोट किया जा रहा है और उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा सरकार एमएसपी पर खरीद लेती, तो बिहार को इससे कितना फायदा मिलता, इसकी कल्पना की जा सकती है।

प्रसंगवश, बिहार में पंजाब की तरह ही किसान आत्महत्या की बहुत घटनाएं नहीं हुई हैं। अतः एम एस पी की संस्कृति और ज्यादा जमीन कर कम कमाई देने वाली फसलों पर अत्यधिक निर्भरता किसानों की हत्या की दोषी है और अन्यदोषियों में उच्च उत्पादन व बाजार जोखिम से भरपूर फसलों मसलन कपास व अन्य शामिल है।

भारत के छोटे किसानों की चिंता का कारण काफी हद तक बाजार चालित है। ये दोनों तरह का है- हद से ज्यादा सुरक्षा (एमएसपी) या बहुत कम सुरक्षा।

छोटे किसानों की आजीविका की समस्या और भी संगीन हो जाती है, क्योंकि ये किसान उत्पादन से संबंधित बहुत सारे जोखिमों जैसे सुखाड़, बाढ़, इनपुट्स का अपर्याप्त इस्तेमाल, कम उत्पादन, पर्याप्त और सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था की कमी,

फसल बर्बादी आदि भी झेलते हैं। फसल बीमा के जरिए उत्पादन के जोखिमों से उबारने की कोशिश की गई थी, लेकिन ये बहुत कारगर नहीं हो सका और अब इसे किसानों के लिए स्वैच्छिक बना दिया है, जो बीमित क्षेत्र को और घटा देगा। फिलहाल सिर्फ ३० प्रतिशत कवरेज ही मिलता है।

किसानों के लिए सबसे ज्यादा दिक्कत व्यापारियों, कमीशन एजेंटों और कर्ज के लिए महाजनों पर निर्भरता है क्योंकि संस्थागत कर्ज केवल ६७ प्रतिशत किसानों तक पहुंचता है और छोटे व सीमांत किसान संस्थागत कर्ज के दायरे के बाहर हैं। निजी स्रोतों से ऋण उगाही क्रेडिट व आउटपुट, इनपुट व आउटपुट तथा क्रेडिट व इनपुट मार्केट को इंटरलॉकिंग की ओर ले जाते हैं, जहां कृषि उत्पादन पर खर्च अधिक होने के बावजूद कृषि उत्पादों की कीमत कम लगती है।

इसके बावजूद, किसानों को उत्पाद की बिक्री के लिए इन चौनलों से इतर दूसरे चौनलों तक पहुंच नहीं होती है भले उन चौनलों पर बेहतर कीमत ही क्यों न मिल रही हो क्योंकि वे उन किसानों को लोन नहीं देते हैं, जो व्यापारियों व एजेंटों से जुड़े होते हैं। ये किसानों की उस आजादी को छीन लेता है, जो न ये एपीएमसी अधिनियम के तहत मिली है।

फिर दूसरी बात ये भी है कि अगर छोटी जोत के किसान या पट्टा किसान हैं, तो लोन के लिए उनकी पहुंच और भी सीमित हो जाती है, क्योंकि लोन देने वाले समूह-व्यक्ति या तो लोन देने से इनकार कर देते है या फिर उच्च ब्याज दर के चलते ऋण महंगा हो जाता है या फिर लोन चुकाने के लिए प्रतिकूल शर्तें रख दी जाती हैं। ये उनकी खेती को अव्यवहार्य बना देता है।

ये जानना बहुत जरूरी है कि छोटे किसान सबसे ज्यादा मार्केट और उत्पाद कीमतों में उतार- चढ़ाव का जोखिम झेलते हैं और इससे निबटने के लिए सांस्थानि कमशीनरी गायब है। उत्पाद की कीमत का निर्धारण अब भी एपीएमसी मार्केट करता है जो कायदे से विनियमित नहीं है और कई मामलों में किसानों के साथ दुर्व्यवहार करता है।

ठेका खेती और सीधी खरीद जैसे कितने भी नये मार्केट किसानों के लिए खुल जाये, छोटे किसान बहुत सारे उत्पादों के लिए एपीएमसी मार्केट पर निर्भर रहेंगे। अतः ये जरूरी है कि ऐसे बाजारों का सही तरीके से संचालन सुनिश्चित किया जाये। खुली बोली लगे, किसानों के उत्पादों खासकर जल्दी खराब हो जाने वाले उत्पादों, जिनकी बोली सड़कों के किनारे, गंदगी से पटे मैदानों में लगती है, की व्यवस्थित अपलोडिंग व स्टोरेज/हैंडलिंग की व्यवस्था हो और किसान विक्रेताओं से कमीशन लेना बंद किया जाये। कई राज्यों में विनियमित मार्केट तक में कमीशन लिया जाता है।

ठेका खेती और सीधी खरीद के मुख्य प्रतिद्वंद्वी एपीएमसी मार्केट हैं। सीधी खरीद में भी कीमत एपी एमसी मार्केट की दर के आधार पर तय होती है। अतः इनका बेहतर संचालन ठेका किसानों व सीधी बिक्री कर्ताओं को बेहतर शर्तें दे सकता है।

भारत में कृषि का भविष्य बहुत सारी

मौजूदा नीतियों और गायब हुई नीतियों तथा नीतिगत सुधारों की दशा-दिशा पर निर्भर करता है। लेकिन ये दुखद है कि ज्यादा तर राज्यों में आज भी कृषि को लेकर कोई नीति नहीं है जबकि अन्य छोटे सेक्टरों मसलन आई टी, उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण आदि को लेकर सालों से नीतियां काम कर रही हैं।

कृषि राज्य से जुड़ा मामला है इसलिए इसको लेकर नीति पर ध्यान नहीं दिया गया लेकिन व्यावहारिक तौर पर देखें तो लम्बे समय से इसका संचालन केंद्र सरकार की तरफ से हो रहा है क्योंकि विभिन्न स्कीमों व कार्यक्रमों के जरिये संसाधनों का आवंटन केंद्र की तरफ से आता है।

जब ये सेक्टर आर्थिक, सामाजिक व पर्यावरणीय संकट से जूझता है, जो कि पिछले कुछ समय से देखा जा रहा है, तो नीति के नहीं होने से इस संकट में सुध लेने के लिए कोई भी साझेदार नहीं आता है। साथ ही कृषि क्षेत्र को लेकर निराशाजनक रवैया बताता है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान महज १३ प्रतिशत है और ४४ प्रतिशत रोजगार ये क्षेत्र देता है इसलिए इसे (खेती को) एक ऐसे क्षेत्र के रूप में देखा जाता है, जो समस्याएं उत्पन्न करता है और यही नीति वक्रता का मूल कारण है।

दूसरी तरफ, कृषि क्षेत्र को कृषि व्यवसाय क्षेत्र के रूप में देखा जाता है, जिसमें कृषि पर आधारित सभी तरह की गतिविधियां व इससे संबंधित कच्चे उत्पाद व खुदरा स्तर तक शामिल हैं। सबको मिलाकर भी भारत की जीडीपी में इसका योगदान २५ प्रतिशत ही है।

लेखक इस परिप्रेक्ष्य पर साल २००७ से ही लगातार चर्चा करते आ रहे हैं और हाल में विश्व बैंक ने भी इसे स्वीकार किया है। ये कृषि क्षेत्र को लेकर अर्थपूर्ण नीति विनियमन तैयार करने में रास्ता भी दिखा सकता है। इस क्षेत्र में आजीविका सुनिश्चित करने और खेती छोड़ रहे लोगों को रोकने के लिए इस परिप्रेक्ष्य की जरूरत है।

अत: समाधान उत्पाद बाजारों के बाहर भी जरूरी है, लेकिन ताजा सुधार विनियमन में बदलाव को लेकर है जिससे ज्यादातर भारतीय किसानों को बहुत मतलब नहीं है क्योंकि एपीएम सी मार्केट व अन्य मार्केट चौनलों जैसे ठेका खेती तक उनकी पहुंच नहीं है। लेकिन, छोटे किसानों को निजी खरीदारों के लिए लेन-देन के खर्च में कमी लाने और नये बाजारों में किसानों की मोल भाव करने की शक्ति बढ़ाने के लिए समूह और फार्मर प्रोड्यूसर्स कंपनी के साथ फार्मर प्रोड्यूसर्स कंपनीज के रूप में साथ आना चाहिए।

वेयरहाउस रिसिप्ट सिस्टम सभी फसलों पर लागू करने के साथ ही किसानों को क्रेडिट व आउटपुट के लिंकेज से मुक्त करने और फसल की कटनी के तुरंत बाद बेचने के दबाव और एक दूसरे से गूंथी हुई बाजार व्यवस्था से मुक्त करने के लिए इस सुविधा का विस्तार करने की जरूरत है।

छोटी जोत की क्षमता को देखते हुए को-ऑपरेटिव खेती की कोई जरूरत नहीं है बल्कि बेहतर बिक्री और बेहतर खरीद के लिए प्री-प्रोडक्शन और पोस्ट-प्रोडक्शन कलस्टर या फूड और फाइबर वैल्यू चेन को कैप्चर करने की जरूरत है।

RNI No. 831/1957
पोस्टल रजि० DL (S)-01/3092/2021-23
पहले भुगतान किये बिना पोस्ट करने का लाइसेंस नं. U(C)-92/2021-23
प्रकाशन की तिथि : 1 मार्च, 2021
नई दिल्ली पी.एस.ओ, नई दिल्ली–1,
तारीख 4 एवं 5, मार्च 2021

कॉरपोरेट किसानी दुनिया में कहीं भी सफल नहीं हो पाई है और भारत में भी इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए हालांकि ठेका खेती व उत्पादक एजेंसी स्थानीय संस्थाओं व नेटवर्क के जरिये आजीविका पर ध्यान केंद्रित करते हुए इस सेक्टर को प्रदर्शन के उच्चस्तर पर ले जा सकता है।

खेती व इससे सम्बद्ध सेक्टरों की महिलाओं समेत अन्य वर्करों को प्रशिक्षित करना भी इतना ही जरूरी है ताकि वे आधुनिक व सतत कृषि उत्पादन और मूल्य वर्धन गतिविधि में प्रभावी तौर पर हिस्सा ले सकें। कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता के आधार पर निष्पक्ष और दायित्व शील उत्पादन और व्यापारिक मुद्दों के साथ जोड़ने की जरूरत है। घरेलू बाजारों के लिए भी ये करने की आवश्यकता है।

ये भी समझना जरूरी है कि कृषि में भौतिक गतिविधियां ही नहीं, बल्कि इस पेशे से जुड़े लोगों की आजीविका मायने रखती है, जो मानव केंद्रित व अर्थपूर्ण नीतियां बनाने में राह दिखाएगी। और आजीविका तथा कृषि व्यवस्था या वैल्यूचेन एप्रोच इस सेक्टर के साझेदारों मसलन किसान वर्कर और अन्य की बेहतरी में मदद कर सकती है।

इसलिए, सभी को फायदा हो इसके लिए कृषि व्यवसाय वैल्यू चेन में आधुनिक और बड़े खिलाड़ियों की ताकत का लाभ उठाने के लिए एक वैश्विक बाजार के संदर्भ में छोटे उत्पादकों के हित की रक्षा को केंद्र और राज्य स्तरों पर नीति और इससे भी अधिक प्रभावी विनियमन की आवश्यकता है ताकि समावेशी और प्रभावी सतत कृषि विकास का प्रयास किया जा सके।

अतः कृषि क्षेत्र में मौजूदा और उभरती चुनौतियों और स्थिरता की समस्याओं से निपटने के लिए उत्पाद, प्रक्रिया और संगठनात्मक नवाचारों के अलावा संस्थागत नवाचारों की आवश्यकता है जिन्हें अवसरों में बदला जा सकता है। भारतीय कृषि व्यवसाय भविष्य , जिसमें कृषि भी शामिल है। कृषि सेक्टर सुनहरा तभी होगा जब कॉरपोरेट एजेंसियां, जो केवल पूरक की भूमिका निभा सकती है, पर निर्भरता की जगह पब्लिक संस्थाएं जैसे सहकारी संस्थाएं और फार्मर प्रोड्यूसर्स कंपनियां इसमें भाग लें।

O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O

भारत कृषक समाज ए–1, निजामुद्दीन वेस्ट, नई दिल्ली– 110013, फोनः 8750585797, 9667673186, ई–मेलः ho@bks.org.in, वैबसाईटः www.farmersforum.in के लिए श्री उरविन्द्र सिंह भाटिया द्वारा सम्पादित, मुद्रित व प्रकाशित तथा एवरेस्ट प्रेस, ई 49/8 ओखला इण्डस्ट्रीयल एरिया, फेस –2, नई दिल्ली –110020 द्वारा मुद्रित।